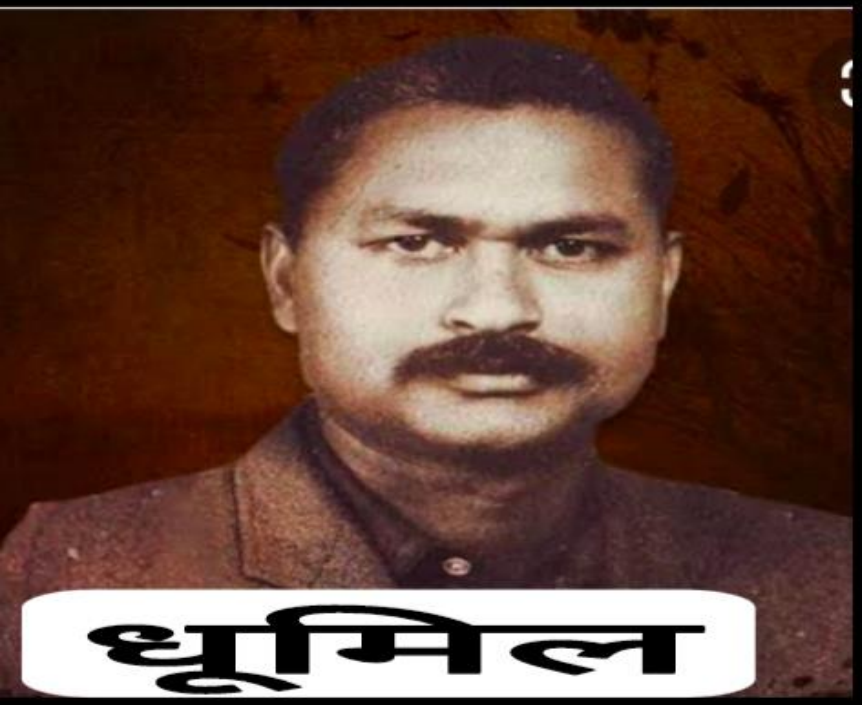

बीस साल बाद

कविता

प्रस्तुतकर्ता- डॉ आरिफ

बीस साल बाद

मेरे चेहरे में वे आँखें लौट आयी हैं
जिनसे मैंने पहली बार जंगल देखा है :
हरे रंग का एक ठोस सैलाब जिसमें सभी पेड़ डूब गए हैं।

और जहाँ हर चेतावनी
ख़तरे को टालने के बाद
एक हरी आँख बन कर रह गयी है।

बीस साल बाद
मैं अपने-आप से एक सवाल करता हूँ
जानवर बनने के लए कतने सब्र की ज़रूरत होती है?
और बिना कसी उत्तर के चुपचाप
आगे बढ़ जाता हूँ
क्यों क आजकल मौसम का मज़ाज यूँ है
क खून में उड़ने वाली पंक्तियों का पीछा करना
लगभग बेमानी है।

बीस साल बाद

दोपहर हो चुकी है
हर तरफ़ ताले लटक रहे हैं
दीवारों से चपके गोली के छर्रों
और सड़कों पर बिखरे जूतों की भाषा में
एक दुर्घटना लखी गई है
हवा से फड़फड़ाते हिन्दुस्तान के नक़्शे पर
गाय ने गोबर कर दिया है।

मगर यह वक़्त घबराये हुए लोगों की शर्म
आँकने का नहीं
और न यह पूछने का –
क संत और सपाही में
देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य कौन है!

बीस साल बाद

आह! वापस लौटकर
छूटे हुए जूतों में पैर डालने का वक़्त यह नहीं है
बीस साल बाद और इस शरीर में
सुनसान ग लयों से चोरों की तरह गुज़रते हुए
अपने-आप से सवाल करता हूँ –
क्या आज़ादी सर्फ़ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है?

और बिना कसी उत्तर के आगे बढ़ जाता हूँ
चुपचाप....